R.N.I. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2024-26

मूल्य-7 रुपये, वर्ष-24, अङ्क-4 अप्रेल 2024

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट (रजि.), अलीगढ़ (उ०प्र०) का
मासिक मुख स्समाचार पत्र

मङ्गलायतन

॥ भगवान मुनि सुव्रतनाथजी ॥

भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन के
22वें साक्षात्कार शिविर की झलकियाँ
(दिनांक 27 मार्च 2024 से 31 मार्च 2024)

मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट (रजि.), अलीगढ़ (उ.प्र.) का

मासिक मुखपत्र

वर्ष-24, अङ्क-4 (वी.नि.सं. 2550; वि.सं. 2080) अप्रेल 2024

महावीर वन्दना

जो मोह माया मान मस्तर, मदन मर्दन वीर हैं।
जो विपुल विघ्नों बीच में भी, ध्यान धारण धीर हैं॥

जो तरण-तारण, भव-निवारण, भव-जलधि के तीर हैं।
वे वन्दनीय जिनेश, तीर्थङ्कर स्वयं महावीर हैं॥

जो राग-द्वेष विकार वर्जित, लीन आतम ध्यान में।
जिनके विराट् विशाल निर्मल, अचल केवलज्ञान में॥

युगपद् विशद् सकलार्थ झलकें, ध्वनित हों व्याख्यान में।
वे वर्द्धमान महान जिन, विचरें हमारे ध्यान में॥

जिनका परम पावन चरित, जलनिधि समान अपार है।
जिनके गुणों के कथन में गणधर न पावें पार हैं॥

बस वीतराग-विज्ञान ही, जिनके कथन का सार है।
उन सर्वदर्शी सन्मती को, वन्दना शत बार है॥

जिनके विमल उपदेश में सबके उदय की बात है।
समभाव समताभाव जिनका, जगत् में विख्यात है॥

जिसने बताया जगत् को, प्रत्येक कण स्वाधीन है।
कर्ता न धर्ता कोई है, अणु-अणु स्वयं में लीन है॥

आतम बने परमात्मा, हो शान्ति सारे देश में।
है देशना-सर्वोदयी, महावीर के सन्देश में॥

साभार : मङ्गल भक्ति सुमन

संस्थापक सम्पादक
स्व. पण्डित कैलाशचन्द्र जैन, अलीगढ़
स्व. श्री पवन जैन, अलीगढ़
सम्पादक
डॉ. जयन्तीलाल जैन, मङ्गलायतन वि०वि०
सह सम्पादक
डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, मङ्गलायतन
सम्पादक मण्डल
बाल ब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी, सोनगढ़
डॉ. राकेश जैन शास्त्री, नागपुर
श्रीमती बीना जैन, देहरादून
सम्पादकीय सलाहकार
श्री चिरंजीलाल जैन, भावनगर
श्री प्रवीणचन्द्र पी. वोरा, देवलाली
श्री वसन्तभाई एम. दोशी, मुम्बई
श्री श्रेयस् पी. राजा, नैरोबी
श्री विजेन वी. शाह, लन्दन
मार्गदर्शन
डॉ. किरीटभाई गोसलिया, अमेरिका
पण्डित अशोक लुहाड़िया, मङ्गलायतन

क्या - कहाँ

प्रथमानुयोग	धर्म और अधर्म	5
द्रव्यानुयोग	समयसार नाटक	9
	स्वानुभूतिदर्शन :	15
प्रथमानुयोग	हस्तिनापुर का अतिशयकारी इतिहास	17
करणानुयोग	भरतक्षेत्र के खण्ड	20
प्रथमानुयोग	कवि परिचय	25
करणानुयोग	श्रुत परम्परा एवं श्रुतज्ञान	26
द्रव्यानुयोग	बालवाटिका	28
	जिस प्रकार-उसी प्रकार	29
	समाचार-दर्शन	30

शुल्क :
एक प्रति : 07.00 ₹
आजीवन (15 वर्ष) : 1000.00 ₹

प्रथमानुयोग

आगामी तीर्थधाम चिदायतन के पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के पावन प्रसंग में पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी द्वारा पंचकल्याणक पर किए गए प्रवचनों का धारावाहिक प्रकाशन किया जा रहा है।

गर्भकल्याणक प्रवचन

धर्म और अधर्म

अपने शुद्धस्वभाव का भान होने पर भी निचलीदशा में धर्मी को भी पूजा, भक्ति, व्रतादि शुभभाव हुए बिना नहीं रहते परन्तु वह जानता है कि यह शुभभाव मेरे स्वद्रव्यानुसार नहीं होता; अपितु परद्रव्यानुसार, अर्थात् पर का अनुसरण करके होता है; इस कारण यह मेरा स्वभाव नहीं है। वास्तव में वह धर्मीजीव, शुभराग को अपने से भिन्न परज्ञेयरूप जानता है और आत्मा की स्व-सन्मुखता की भावना करता है।

शुभराग में देव-शास्त्र-गुरु आदि पर का लक्ष्य होता है और अशुभभाव में स्त्री, पुत्र, शरीरादि पर का लक्ष्य होता है। कोई शुभाशुभभाव हो, वह पर की सन्मुखता से होता है। आत्मा की सन्मुखता से शुभाशुभभाव की उत्पत्ति नहीं होती, शुद्धभाव की ही उत्पत्ति होती है।

जब धर्मी जीव अपने स्वरूप में लीन नहीं रह पाता तो उसे भी परद्रव्यानुसार शुभ-अशुभपरिणाम होते हैं और अशुभ से बचने के लिए पूजा, भक्ति, स्वाध्याय इत्यादि के शुभभाव होते हैं। यदि शुभ-अशुभभाव होते ही न हों, तब तो वीतराग-केवली हो जाए अथवा यदि परद्रव्य की सन्मुखता के समय शुभभाव न हों तो अशुभभाव हो; क्योंकि परद्रव्य के लक्ष्य में या तो शुभ होता है या अशुभ होता है। धर्मी को निचलीदशा में अशुभ से बचानेमात्र के लिए शुभभाव होता है परन्तु वह पर के अवलम्बन से होता है; उसमें धर्म नहीं है।

यदि आत्मा के स्वभाव के अवलम्बन से भी शुभाशुभभाव होते हों तो

वे भाव, आत्मा का स्वभाव ही हो जाएँगे और कभी उनका अभाव भी नहीं होगा। आत्मा के स्वभाव में पुण्य-पाप नहीं है; इस कारण आत्मस्वभाव का अनुसरण करने से पुण्य-पाप की उत्पत्ति नहीं होती।

आत्माधीन परिणति से पुण्य-पाप उत्पन्न नहीं होते परन्तु वे दोनों भाव, कर्म के मन्द-तीव्र उदयदशा में रहे हुए परद्रव्यानुसार परिणति के आधीन होने से ही प्रवर्तित होते हैं, उनमें धर्म नहीं है। आत्मा स्वद्रव्याधीन न परिणमें और परद्रव्यानुसार परिणति करे तो वह बन्ध का ही कारण है।

अज्ञानी को स्वद्रव्य-परद्रव्य की भिन्नता का भान नहीं है; अत: वह तो श्रद्धा अपेक्षा से भी परद्रव्यानुसार ही परिणमता है। धर्मी जीव को स्वाधीन आत्मतत्व की दृष्टि होने से वह श्रद्धा अपेक्षा से तो स्वद्रव्यानुसार ही परिणमता है, तथापि अभी सम्पूर्णरूप से स्वद्रव्य में स्थिरता नहीं होने से वहाँ अस्थिरता से परद्रव्यानुसार परिणति के आधीन होकर परिणमता है, उतनी शुभाशुभभाव की उत्पत्ति है।

यहाँ श्री आचार्यदेव ने यह सिद्धान्त दर्शाया है कि स्वद्रव्यानुसार परिणमना शुद्धता का कारण और परद्रव्यानुसार परिणमना ही अशुद्धता का कारण है। कोई कर्म अथवा कुदेवादिक परवस्तुएँ आत्मा को अशुद्धता का कारण नहीं, परन्तु उस परद्रव्य के अनुसार परिणमना — यह एक ही अशुद्धता का कारण है।

'परद्रव्यानुसार परिणति के आधीन' माने क्या? पहले परद्रव्यानुसार परिणति हुई और पश्चात् आत्मा उसके आधीन हुआ — ऐसा नहीं है परन्तु आत्मा, स्वद्रव्यानुसार परिणति से चूका, उसी समय परद्रव्य के अनुसार परिणति के आधीन हुआ है। परद्रव्य अनुसार परिणति होने का और उसके आधीन होने का काल पृथक् नहीं है।

यदि आत्मा स्वयं परद्रव्यानुसार परिणति करता है तो ही अशुद्धता होती है। यदि स्वद्रव्यानुसार परिणमें तो अशुद्धता नहीं होती। 'आत्मा ने पूर्व में अशुद्धभाव से जो कर्म बाँधे हैं, वे कर्म जब उदय में आवें, तब एक बार तो

उनमें जुड़कर विकार करना ही पड़ता है' — ऐसा कोई अज्ञानी मानता है, परन्तु यह बात एकदम मिथ्या है; कारण कि यदि उस समय भी आत्मा, स्वद्रव्य के आधीनपने परिणमे तो उसको अशुद्धता नहीं होती और कर्मोदय का भी अभाव हो जाता है।

कोई अज्ञानी ऐसा मानता है कि 'पहले समय जो राग-द्वेष हुए, दूसरे समय उनका अभाव करना।' देखो! इसमें भी पर्यायदृष्टि की सूक्ष्म भूल है। क्या पहले समय के राग-द्वेष दूसरे समय में विद्यमान है? तुझे किसका अभाव करना है? पहले समय के राग-द्वेष का दूसरे समय तो अभाव हो ही जाता है, उनका अभाव नहीं करना पड़ता। जिसकी दृष्टि राग-द्वेष के अभाव करने पर है, वह मिथ्यादृष्टि है। वस्तुत: राग-द्वेष का अभाव नहीं करना पड़ता किन्तु दूसरे समय स्वयं स्वभाव के आधीन परिणमें तो राग-द्वेष की उत्पत्ति ही नहीं होती; अत: उपचार से 'राग-द्वेष का अभाव किया' —ऐसा कहा जाता है। स्वभावदृष्टि करके उसके आश्रय से परिणमने पर शुद्धता का उत्पाद होता है और अशुद्धता का उत्पाद ही नहीं होता। तात्पर्य यह है कि स्वभाव की दृष्टि प्रगट करके स्वभाव के आश्रय से परिणमना ही धर्म है।

आत्मा का स्वरूप स्वतन्त्र और शुद्ध होने पर भी अनादि से परद्रव्य के सम्बन्ध से स्वयं शुभाशुभभाव करता है; इस कारण उसे कर्मबन्धन होता है। वह शुभाशुभभाव, आत्मा को धर्म का कारण नहीं है। यदि आत्मा अपने ज्ञाता-दृष्टास्वभाव का आश्रय करे तो शुद्धोपयोग होता है, वह धर्म है।

यह आत्मा, देह से भिन्न स्वयं-सिद्ध वस्तु है। किसी ईश्वर ने इसे बनाया नहीं है। ईश्वर तो शुद्ध आत्मा है, वह किसी का कुछ नहीं करता तथा कर्ता किसी वस्तु को अत्यन्त नया नहीं बना सकता। स्वयं-सिद्ध नित्य वस्तु का कर्ता कोई नहीं हो सकता। यदि वस्तु का कर्ता कहा तो वह वस्तु अनित्य सिद्ध होती है क्योंकि बनायी जानेवाली वस्तु अनित्य होती है; त्रिकाली वस्तु को किया नहीं जा सकता। कार्य, त्रिकाली वस्तु नहीं; बल्कि वस्तु की अवस्था है। प्रत्येक समय पदार्थ की नयी-नयी अवस्था होती है,

वह पदार्थ स्वयं ही उसका कर्ता है। आत्मा अनादि-अनन्त पदार्थ है और स्वयं ही अपनी शुद्ध-अशुद्ध पर्यायों का कर्ता है।

आत्मा अनादि-अनन्त ज्ञान की निधि है। उस आत्मा को पुण्य-पाप जितना मानना अज्ञान है। जो पुण्य-पापभाव होते हैं, वे अशुद्धभाव है, वह आत्मा का वास्तविक स्वरूप नहीं है। आत्मा तो चैतन्य शक्ति से अखण्डित प्रतापवाला है—ऐसे आत्मा का आश्रय करने से शुद्धभाव होता है।

यहाँ आचार्यदेव कहते हैं कि आत्मा में अशुद्धोपयोग होता है, वह वास्तव में परद्रव्यानुसार परिणति के आधीन होने से ही होता है; कर्म आदि निमित्त के कारण अशुद्धोपयोग कहना तो उपचारमात्र है। जड़कर्म का किसी समय तीव्र तो किसी समय मन्द उदय होता है, उस समय यदि आत्मा अपने स्वभाव का अनुसरण न करके कर्म के उदय का अनुसरण करता है तो उसे विकार होता है और यदि वह अपने स्वभाव का अनुसरण करके परिणमित हो तो विकार नहीं होता। अपनी अवस्था में स्वभाव को भूलकर अथवा स्वभाव में अस्थिर होकर परसन्मुख परिणमना अशुद्धोपयोग है।

अज्ञानी को तो स्वभाव को भूलकर अशुद्धोपयोग होता है और ज्ञानी को स्वभाव की श्रद्धा कायम रखकर अस्थिरता से अशुद्धोपयोग होता है। जहाँ अन्दर में चैतन्यद्रव्य का अवलम्बन हटा, वहाँ परद्रव्य का अवलम्बन आये बिना नहीं रहता। पुण्य-पाप के भाव, परद्रव्य के अवलम्बन से होते हैं और आत्मस्वभाव के आश्रय से धर्म होता है।

देव-शास्त्र-गुरु आदि परद्रव्य है, उनके आश्रय से आत्मा में धर्म नहीं होता; अपितु राग की उत्पत्ति होती है। परद्रव्य के आश्रय से होनेवाले राग के अवलम्बन से भी धर्म की उत्पत्ति नहीं होती तथा आत्मा की वर्तमान दशा का अवलम्बन करके अटकने से भी विकार की ही उत्पत्ति होती है। यदि आत्मा के अखण्ड ज्ञानस्वभाव को पहिचानकर, उसका अवलम्बन करे तो उसके आश्रय से ही सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप निर्मलदशा प्रगट होती है, वह मुक्ति का कारण है।

क्रमशः

द्रव्यानुयोग

श्री समयसार नाटक पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के धारावाही प्रवचन

कर्त्ता कर्म क्रिया द्वार प्रवचन

अज्ञानी ने मान रखा है कि मैं पुण्य-पाप का कर्त्ता हूँ, मैं दूसरों की दया पाल सकता हूँ इत्यादि.... ऐसा अज्ञानी भले ही माने; परन्तु राग और आत्मा कभी एक नहीं होते हैं। दूसरों की मदद करना, दान देना, सबको लाभ हो वैसा करना- ऐसा कहे; परन्तु कौन किसका कार्य कर सकता है? भाई! इस शरीर की अँगुली को हिलाना भी तेरा कार्य नहीं है तो दूसरे अन्य द्रव्यों के कार्य तू किसप्रकार कर सकेगा?

'पूरव करम उदै आइके दिखाई देइ' -'दिखते हैं' -ऐसा कहा है अर्थात् पूर्व कर्म का उदय आता है, तब उसके वश होकर जीव राग-द्वेष करता दिखता है; परन्तु ज्ञानी उनके (राग-द्वेष के) कर्ता नहीं हैं। ज्ञानी को शुद्ध चैतन्य की दृष्टि हुई है- इसकारण वे शुद्ध चैतन्य के साथ राग को नहीं मिलाते। ज्ञानी राग की क्रिया के कर्ता नहीं और न राग के स्वामी ही होते हैं, मात्र जाननेवाले रहते हैं।

जिस भाव से एक जीव का हित होता है, उसी भाव से समस्त जीवों का हित होता है। इसलिए धर्म तो जिससे एक को होता है, उससे ही सम्पूर्ण समाज को होता है। सबके लिए धर्म का मार्ग एक ही है। प्रत्येक जीव के पुण्य-पाप के उदय में अन्तर होता है, राग में अन्तर होता है, विकल्प में अन्तर होता है; परन्तु जानते हैं कि वह मेरी सत्ता की चीज नहीं है। राग की सत्ता में मैं नहीं हूँ और मेरी सत्ता में राग नहीं है। राग मेरा कार्य नहीं है।

श्रोता:- ज्ञानी को मात्र जानना ही होता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री:- मात्र जानना अर्थात्? ज्ञान और आनन्द में रहकर राग का जानना होता है। आत्मा राग से खाली है; परन्तु ज्ञान से खाली नहीं है। ज्ञान और आनन्द से भरपूर भरा है। उसमें रहकर रागादि को मात्र जानता है। ज्ञानी को भक्ति का भाव आवे, पूजा का भाव आवे; दया, दान का विकल्प

आवे तो भले ही आवे; परन्तु वह मेरा कर्तव्य नहीं है; क्योंकि मेरी वस्तु से वह भिन्न वस्तु है।

'करता न होय तिन्ह कौ तमासगीर है' –ज्ञानी राग में आकर राग के कर्ता नहीं होते, मात्र उसके दर्शक हैं, जानने–देखनेवाले हैं। श्रावक को भी छह आवश्यक– देवपूजा, गुरुउपासना, स्वाध्याय, संयम, तप और दान आदि अनेकप्रकार के शुभ विकल्प आते है; परन्तु वे उनके कर्ता नहीं होते, जाननेवाले रहते हैं। मैं तो ज्ञान और आनन्दस्वरूप हूँ। विभाव–विकल्प की वृत्तियाँ आती हैं, वे भले ही 'हों'; परन्तु वे मेरा स्वरूप नहीं हैं।

धर्मी की दृष्टि शुद्ध चैतन्य पर पड़ी है– इसकारण वह राग से तो भिन्न ही पड़ गया है। ज्ञानी सर्व भावों के मात्र दर्शक–देखनेवाले हैं, कर्ता नहीं; क्योंकि ज्ञानी को उनमें अहंबुद्धि नहीं है। धर्म की शुरुआत में भी ऐसी दशा होती है। अज्ञानी जीव ने अनन्तकाल में व्रत–तप आदि कर–करके अनन्तबार शरीर को सुखा दिया है; परन्तु अज्ञान को नहीं छोड़ा है। इसकारण यहाँ उसको जीव और पुद्गल की भिन्न–भिन्न पहचान कैसे करना है? यह आगे के कलश (पद) में बताते हैं।

मिले हुए जीव और पुद्गल की पृथक्– पृथक् परख:–

जैसैं उसनोदकमैं उदक–सुभाव सीरौ,
आगकी उसनता फरस ग्यान लखियै।
जैसैं स्वाद व्यंजनमैं दीसत विविधरूप,
लौनकौ सुवाद खारौ जीभ–ग्यान चखियै।।
तैसैं घट पिंडमैं विभावता अग्यानरूप,
ग्यानरूप जीव भेद–ग्यानसौं परखियै।
भरमसौं करमकौ करता है चिदानंद,
दरब विचार करतार भाव नखियै।।16।।

अर्थ:– जिस प्रकार स्पर्शज्ञान से शीत स्वभाववाले गरम जल की अग्निजनित उष्णता पहिचानी जाती है, अथवा जिसप्रकार जिह्वा इन्द्रिय से अनेक स्वादवाली तरकारी में नमक जुदा चख लिया जाता है, उसीप्रकार

भेदविज्ञान से घटपिंड में का अज्ञानरूप विकार और ज्ञानमूर्ति जीव परख लिया जाता है, आत्मा को कर्म का कर्त्ता मानना मिथ्यात्व है, द्रव्यदृष्टि से 'आत्मा कर्म का कर्त्ता है' ऐसा भाव ही नहीं होना चाहिये ।।16।।

काव्य - 16 पर प्रवचन

क्या कहते हैं ? देखो !

जैसे पानी गर्म है उस समय भी उसका स्वभाव तो शीतल ही है। पानी में उष्णता है, वह तो अग्निजनित है। स्पर्शज्ञान से वह उष्णता पहचानी जा सकती है। 'कलश टीका' में तो कहा है कि 'स्वभावग्राही ज्ञान' से जाना जा सकता है कि उष्णता अग्नि की है और पानी का स्वभाव तो शीतल है। जिसको अपने स्वभाव का ज्ञान हुआ, उसको पर के स्वभाव का भी यथार्थ ज्ञान होता है। जिसको शरीर और राग से भिन्न निज आत्मा का ज्ञान नहीं है, उसको पर का भी यथार्थ ज्ञान नहीं होता। कलश टीका में 60 वें कलश के अर्थ में 'ज्ञानादेव' का इसप्रकार अर्थ किया है। मेरा आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप है और शरीर तथा रागादि विकल्पों से भिन्न है -ऐसा भेदविज्ञान जिसने किया है, वह पानी का स्वभाव शीतल है और उष्णता अग्नि की है- ऐसा भेदविज्ञान यथार्थरूप से कर सकता है।

ऐसा स्वरूप है भाई ! लोग तो बाहर में ऐसा करना और वैसा करना इसी में पूरा जीवन व्यतीत कर देते हैं। उनको शरीर के छूटने पर कोई शरण नहीं दिखता। अपने साथ तो एक टुकड़ा भी आनेवाला नहीं है, वहाँ अन्य कौन शरण ? अन्दर में अपना शरण है, वह तो लिया नहीं, उसका क्या हो ?

द्रव्यदृष्टि से आत्मा कर्म का कर्ता है यह भाव ही नहीं होना चाहिए। जहाँ द्रव्यदृष्टि होती है, वहाँ वह राग का कर्ता नहीं, राग का भोक्ता नहीं और राग को ज्ञेय करना पड़ता है- ऐसा नहीं है। मैं भगवान ज्ञायकभाव हूँ- ऐसी दृष्टि होने पर उसको राग ज्ञेयरूप से ज्ञात होता है। तीन लोक के नाथ वीतराग परमात्मा इन्द्रों और गणधर संतों की उपस्थिति में ऐसा फरमाते थे। स्वर्ग के अर्द्धलोक का स्वामी शकेन्द्र, अर्द्धलोक का स्वामी ईशान इन्द्र और

मनुष्यों के छह खण्ड के स्वामी चक्रवर्ती इत्यादि इन्द्र और गणधरों, मुनियों और श्रावकों इत्यादि की उपस्थिति में भगवान की वाणी–दिव्यध्वनि में ऐसा आता था।

भगवान! तेरा ज्ञान यथार्थ हो तो तू जल का स्वभाव शीतल है, यह गर्म पानी के समय भी बराबर जान सकेगा। यदि तेरा ज्ञान राग से भिन्न पड़ा है तो वह पानी को उष्णपने से भिन्न जान लेगा। उष्णपना पानी का विभाव है और राग है, वह जीव का विभाव है। 'ज्ञानात्+एव' यह शब्द मूल कलश में तीनों ही पंक्तियों में लिया है। ज्ञान से ही स्वभाव का और विभाव का भेदज्ञान होता है। मेरा स्वभाव ज्ञान है, राग मेरा स्वभाव नहीं है– ऐसा भेदज्ञान करना ही प्रयोजनभूत है।

जैसे उष्णता के समय भी पानी का स्वभाव उष्ण नहीं है, पानी का स्वभाव तो शीतल है; उसीप्रकार क्रोध के समय भी जीव का स्वभाव क्रोधी नहीं है, जीव का स्वभाव तो ज्ञान है– ऐसे भेदज्ञान से ज्ञानमूर्ति जीव और अज्ञानरूप विकार को भिन्न पहचाना जा सकता है। जिसको निजस्वरूप का बोध होता है, उसको ही क्रोधादि भाव मेरा स्वभाव नहीं है– ऐसा ज्ञान होता है। 'कलश टीका' में पण्डित राजमलजी ने उसको 'स्वरूपग्राहीज्ञान' कहा है। जिसको स्वभाव का 'स्वरूपग्राहीज्ञान' हुआ है उसको ही 'क्रोधादि विकार मेरे स्वभाव से भिन्न हैं' –ऐसा ज्ञान होता है। सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान तो जिसको होता है, समान ही होता है। सिंह का सम्यग्दर्शन हो, केवली का हो अथवा चौथे गुणस्थानवर्ती तिर्यंच का हो, सम्यग्दर्शन में कोई अन्तर नहीं है। प्रत्येक का ज्ञान भी समान है। किसी को कम और किसी को ज्यादा ज्ञान होता है; परन्तु प्रतीति की अपेक्षा तो सबको समान श्रद्धा है।

पानी के दृष्टान्त की तरह जीव का स्वभाव पानी के शीतल स्वभाव की भाँति अतीन्द्रिय आनन्दमय शान्त स्वभाव है और राग–द्वेषादि भाव पानी में विद्यमान उष्णता जैसे विभाव हैं। मेरा स्वभाव तो ज्ञानानन्दमय शान्त–शीतल स्वभाव है और क्रोधादिभाव तो अग्नि की उष्णतावत गर्म हैं –ऐसा

विवेक जिसको प्रकट हुआ है वह व्यवहार में भी विवेक करता है। गर्म पानी होने पर भी वह उसके शीतल स्वभाव को जान लेता है।

व्रत करे, तप करे अथवा उपवास करे इससे धर्म नहीं होता है। मैं आहार ले सकता हूँ अथवा छोड़ सकता हूँ- ऐसा माननेवाला तो जड़ का स्वामी होकर मिथ्यात्वभाव का पोषण करता है। मार्ग तो ऐसा है भाई! इस मार्ग की रुचि होने वाले की सम्पूर्ण लाइन ही बदल जाती है, और जिसकी दिशा बदलती है, उसकी दशा बदल जाती है।

जैसे स्वाद व्यजंन में, दीसत विविधरूप। लौन को सुवाद खारौ, जीभ-ग्यान चखिये। लौकी, किंडोरा, परवल, तोरई आदि सभी सब्जियों का स्वाद तो अलग-अलग होता है; परन्तु प्रत्येक में डाले हुए नमक का स्वाद तो खारा ही है। उस खारेपन के द्वारा सब्जी में नमक भिन्न चख लिया जाता है। जिह्वा इन्द्रिय के निमित्त से ज्ञान सब्जी और नमक के भिन्न-भिन्न स्वभाव को जान लेता है। ऐसा बोध किसको होता है?कि जिसने राग के खारे स्वभाव को और चैतन्य के मधुर स्वाद को भिन्न जान लिया है। जिसने स्वभाव और विभाव का भेदज्ञान किया है, उसको ही वास्तविकरूप से ज्ञान होता है कि नमक का खारा स्वाद सब्जी से भिन्न है। जिसको खाने में गृद्धि हो, उसको यथार्थ ज्ञान नहीं होता; उसको तो सब्जी ही खारी हो गई है- ऐसा भासित होता है।

एक बार श्रीमद्राजचन्द्र राजपुर आये थे वहाँ उनको थाली में लौकी की सब्जी रखी गई तो वे तुरंत बोले कि इस सब्जी में नमक ज्यादा है। लौकी के रेशे भिन्न पड़े हुए देखकर चखे बिना ही नमक की अधिकता ख्याल में आ गई। देखो, यह ज्ञान की क्रिया! जिसको सब्जी आदि परद्रव्य में गृद्धि है, उसको ऐसा ज्ञान नहीं होता है। जिसने स्वभाव और विभाव तथा शरीरादि से भेदज्ञान किया है, उसको ही परज्ञेय का भी यथार्थ ज्ञान होता है।

तैसे घटपिण्ड में विभावता अग्यानरूप। ज्ञानरूप जीव भेद-ग्यान सौं परखिये। आत्मा का स्वभाव तो ज्ञानानन्दरूप है और पुण्य-पापादि का

विकल्प तो अज्ञानरूप है, विभावरूप है; क्योंकि उनमें ज्ञान नहीं है और ज्ञानरूप चैतन्य तो चैतन्य..चैतन्य..जानन..जाननस्वभावी जीव तो स्वरस से विकसती चैतन्यधातु है। चैतन्यधातु तो नित्य है; परन्तु भेदज्ञान से उसको विभाव से भिन्न पहचान लेनेवाले को स्वरस का विकास होता जाता है।

'स्वरस विकसित नित्य चैतन्यधातु' –चैतन्यधातु का लक्ष्य होने पर विभाव से तो भेदज्ञान होता है और प्रतिक्षण पर्याय में ज्ञान विकास पाता जाता है। यही ज्ञान राग और अपने स्वभाव को भिन्न जानता है।

देखो! व्यवहार रत्नत्रय का विकल्प भी अज्ञान (ज्ञान के अभावरूप अज्ञान) है। परद्रव्य अनुसारी विभाव अज्ञान है। लोग जिनको पंच महाव्रत कहते हैं, उनको यहाँ भगवान विभाव–अज्ञान कहते हैं। दुनिया का भगवान के साथ झगड़ा है। लोगों को ज्ञानानन्द चैतन्यस्वभावी भगवान आत्मा का भान नहीं है। अत: वे अपने को ज्ञानानन्द से विमुख ऐसे पुण्य–पाप के भावों का कर्ता मानते हैं। राग में तो अंधकार है। राग में चैतन्य की जागृत दशा का प्रकाश कहाँ से हो सकता है? राग तो अंधकूप है। इसी अधिकार के 11वें पद में जीव को अनादिकाल से लगे हुए मिथ्यात्व को अंधकूप कहा है।

इस नाटक समयसार ग्रन्थ के पन्ने अच्छे हैं, अक्षर भी बड़े हैं और भाव भी गंभीर है इसकारण मोटे ग्रन्थ जैसा लगता है। अन्दर सिद्धान्त में अलौकिक भाव भरे हैं।

जैसे पानी में उष्णता है वह अग्नि की है, पानी का स्वभाव तो शीतल है। उसीप्रकार आत्मा में पुण्य–पाप होते हैं, वे विभाव–अज्ञान हैं, जीव का स्वभाव तो ज्ञान और आनन्द है।

भाई! यदि तुझे यह बात एकान्त जैसी लगती हो तो भगवान से जाकर कह! यह कोई लौकिक कथा की और अकेली क्रिया की बात नहीं है। भगवान जो तीन काल–तीन लोक में रहे हुए पदार्थों के ज्ञान उपजाने की विधि बताते हैं– ऐसी विधि अन्यत्र कहीं नहीं है। वीतराग परमेश्वर की बात ही कोई अलौकिक है। ऐसा स्वरूप सम्प्रदाय में भी कहीं नहीं है तो अन्यमत में तो हो ही कहाँ से?

क्रमशः

स्वानुभूतिदर्शन : बहिनश्री की तत्त्वचर्चा

प्रश्न :— मुनिराज मुनिपने की मर्यादा छोड़कर विशेष बाहर नहीं जाते। मर्यादा छोड़कर विशेष बाहर जाये तो मुनिदशा ही नहीं रहती। तो मुनिराज की मर्यादा कैसी होती है ?

समाधान :— मुनिराज अपनी मुनिदशा की मर्यादा छोड़कर बाहर नहीं जाते। सातवें गुणस्थान में अन्तर्मुहूर्त में आत्मा में जाते हैं और फिर बाहर आ जाते हैं, पुनः अन्तर में जाते हैं और बाहर आते हैं। वे बाहर आयें तब देव-शास्त्र-गुरु आदि के शुभ विकल्प होते हैं तथापि उनमें अधिक देर नहीं रुकते, तुरन्त अन्तर में चले जाते हैं। अन्दर क्षण-क्षण में छठ्ठे-सातवें गुणस्थान में झूलते रहते हैं। विकल्प की दशा में, शुभभाव में अधिक देर तक नहीं रुकते। वे शास्त्र लिखते हैं उसमें भी इतना अधिक रस नहीं आता कि सातवाँ गुणस्थान न आवे। मुनिराज को ज्ञायकधारा तो निरन्तर चलती ही रहती है परन्तु शास्त्र की रचना करते हों, भगवान के स्तोत्र बनाते हों, स्तोत्र बोलते हों या उपदेश देते हों, उन सबमें ऐसा रस नहीं आता कि आत्मा में लीनता करना छूट जाये। मुनिपने की मर्यादा कदापि नहीं छूटती। विकल्प के समय भी मुनि के पंचमहाव्रत के जो कार्य हों, उनकी मर्यादा में वे खड़े रहते हैं। गृहस्थयोग्य कार्यों में नहीं जुड़ते। गृहस्थों के साथ विशेष वार्तालाप करना, किसी कार्य में जुटना, किसी व्यवस्था में लगना ऐसे कार्य मुनिराज के नहीं होते। यदि ऐसे कार्य करें तो उनकी मुनिदशा ही छूट जाये। शुभभाव में विशेष नहीं रुकते। अन्तर में शुभ का रस लग जाये और अप्रमत्तदशा न आवे ऐसा नहीं बनता।

शास्त्र में आता है कि तुम सबका (शुभाशुभ दोनों भावों का) निषेध करते हो तो मुनि किसके आश्रय से मुनिपने का पालन करेंगे ? वहाँ कहा है

कि मुनि कहीं अशरण नहीं हैं, उनको आत्मा की शरण है। वे आत्मा के अमृत में निरन्तर लीन हैं, उनको आत्मा की ही शरण है। बाहर शुभभाव आयें उन सबका निषेध है तो मुनिपना किसके आधार से पालेंगे? मुनि बारम्बार (अन्तर्मुहूर्त-अन्तर्मुहूर्त में) स्वरूप में जाते हैं और उसके आधार से मुनिपने का पालन करते हैं। मुनिदशा ऐसी है कि शुभ में अधिक रुकें और अप्रमत्तदशा न आये तो मुनिदशा छूट जाती है। मर्यादा न छूटे ऐसे योग्य शुभभाव मुनि के होते हैं; गृहस्थ को उसके योग्य और सम्यग्दृष्टि को उसके योग्य भाव होते हैं—ऐसी मर्यादा है। मुनिराज छट्ठे-सातवें गुणस्थान में झूलते रहते हैं और बाद में श्रेणी माँडते हैं। कोई उसी भव में मोक्ष जाते हैं, और कोई अगले भव में।—ऐसी मुनिदशा है। **क्रमशः**

मङ्गलायतन के सम्बन्ध में जानकारी

फार्म नं० 4, नियम नं० 8

पत्रिका का नाम	: *मङ्गलायतन* (हिन्दी)
प्रकाशन अवधि	: मासिक
प्रकाशक का नाम	: स्वप्निल जैन (भारतीय)
पता	: 'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़ (उत्तरप्रदेश)
सम्पादक का नाम	: डॉ. जयन्तीलाल जैन (भारतीय)
पता	: उपरोक्त
मुद्रक का नाम	: स्वप्निल जैन (भारतीय)
पता	: उपरोक्त
मुद्रण का स्थान	: *मङ्गलायतन* मुद्रणालय, आगरा रोड, अलीगढ़- 202001
स्वामित्व	: स्वप्निल जैन, 'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़ (उ.प्र.)

मैं स्वप्निल जैन एतद् द्वारा घोषणा करता हूँ कि मेरी अधिकृत जानकारी एवं विश्वास के अनुसार उपुर्यक्त विवरण सत्य हैं।

स्वप्निल जैन

दिनाङ्क : 01.04.2024 प्रकाशक

प्रथमानुयोग

....गतांक से आगे

तीर्थधाम चिदायतन

हस्तिनापुर का अतिशयकारी इतिहास

धार्मिक नगरी हस्तिनापुर का वर्णन उत्तरपुराण से

जिन्होंने कन्था के समान सब परिग्रहों का त्याग कर मोक्ष प्राप्त कराने वाले सद्ग्रन्थों की तथा कुन्थु से अधिक सूक्ष्म जीवों की रक्षा की वे कुन्थुनाथ भगवान मोक्ष नगर तक जानेवाले तुम सब पथिकों की रक्षा करें। इसी जम्बूद्वीप के पूर्वविदेहक्षेत्र में सीता नदी के दक्षिण तट पर एक वत्स नाम का देश है। उसके सुसीमा नगर में राजा सिंहरथ राज्य करता था। वह श्रीमान् था, सिंह के समान पराक्रमी था और बहुत से मिले हुए शत्रुओं को अपनी महिमा से ही वश कर लेता था।

न्यायपूर्ण आचार की वृद्धि करनेवाले एवं समस्त पृथिवीमण्डल को दण्डित करने वाले उस राजा के सम्मुख पापरूपी शत्रु मानो भय से नहीं पहुँचते थे—दूर-दूर ही बने रहते थे। शास्त्रमार्ग के अनुसार चलनेवाले और शत्रुओं को नष्ट करनेवाले उस राजा के लिए जो भोगानुभव प्राप्त था वही उसकी इस लोक तथा परलोक सम्बन्धी सिद्धि को प्रदान करता था। वह राजा किसी समय आकाश में उल्कापात देखकर चित्त में विचार करने लगा कि यह उल्का मेरे मोहरूपी शत्रु को नष्ट करने के लिए ही मानो गिरी है। उसने उसी समय यतिवृषभ नामक मुनिराज के समीप जाकर उन्हें नमस्कार किया और उनके द्वारा कहे हुए धर्मतत्त्व के विस्तार को बड़ी भक्ति से सुना। वह बुद्धिमान विचार करने लगा कि मैं मोह से जकड़ा हुआ था, इस उल्का ने ही मुझे आपत्ति की सूचना दी है ऐसा विचार कर मोह को छोड़ने की इच्छा से उसने अपना राज्यभार शीघ्र ही पुत्र के लिए सौंप दिया और बहुत से राजाओं के साथ संयम धारण कर लिया। संयमी होकर उसने ग्यारह अंगों का ज्ञान प्राप्त किया तथा सोलह कारण भावनाओं के द्वारा तीर्थंकर नामक पुण्य प्रकृति का बन्ध किया। आयु के अन्त में समाधिमरण

कर वह अन्तिम अनुत्तर विमान—सर्वार्थसिद्धि में उत्पन्न हुआ। वहाँ उसने बड़े कौतुक के साथ प्रवीचाररहित उस मानसिक सुख का अनुभव किया जो मुनियों को भी माननीय था तथा वीतरागता से उत्पन्न हुआ था।

इसी जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र सम्बन्धी कुरुजांगल देश में हस्तिनापुर नाम का नगर है, उसमें कौरववंशी काश्यपगोत्री महाराज सूरसेन राज्य करते थे। उनकी पट्टरानी का नाम श्रीकान्ता था। उस पतिव्रता ने देवों के द्वारा की हुई रत्नवृष्टि आदि पूजा प्राप्त की थी। श्रावण कृष्ण दशमी के दिन रात्रि के पिछले भाग सम्बन्धी मनोहर पहर और कृत्तिका नक्षत्र में जब सर्वार्थसिद्धि के उस अहमिन्द्र की आयु समाप्त होने को आई तब उसने सोलह स्वप्न देखकर अपने मुँह में प्रवेश करता हुआ एक हाथी देखा। प्रातःकाल भेरी आदि के माङ्गलिक शब्द सुनकर जगी, नित्य कार्यकर स्नान किया, माङ्गलिक आभूषण पहिने और कुछ प्रामाणिक लोगों से परिवृत होकर बिजली के समान सभारूपी आकाश को प्रकाशित करती हुई दूसरी लक्ष्मी के समान राजसभा में पहुँची। वहाँ वह अपनी योग्यता के अनुसार विनयकर पति के अर्धासन पर विराजमान हुई। अवधिज्ञानरूपी नेत्रों को धारण करनेवाले पति को सब स्वप्न सुनाये और उनसे उनका फल मालूम किया। अनुक्रम से स्वप्नों का फल जानकर उसका मुखकमल इस प्रकार खिल उठा, जिस प्रकार कि सूर्य की किरणों के स्पर्श से कमलिनी खिल उठती है।

उसी समय देवों ने महाराज शूरसेन और महारानी श्रीकान्ता का गर्भकल्याणक सम्बन्धी अभिषेक किया, बहुत प्रकार की पूजा की और सन्तुष्ट होकर स्वर्ग की ओर प्रयाण किया। जिस प्रकार मुक्ताविशेष से सीप गर्भिणी होती है उसी प्रकार उस पुत्र से रानी श्रीकान्ता गर्भिणी हुई थी और जिस प्रकार चन्द्रमा को गोदी में धारण करनेवाली मेघों की रेखा सुशोभित होती है, उसी प्रकार उस पुत्र को गर्भ में धारण करती हुई रानी श्रीकान्ता सुशोभित हो रही थी। जिस प्रकार पश्चिम दिशा चन्द्रमा को उदित करती

है, उसी प्रकार रानी श्रीकान्ता ने नव मास व्यतीत होने पर वैशाख शुक्ल प्रतिपदा के दिन आग्नेय योग में उस पुत्र को उदित किया—जन्म दिया।

उसी समय इन्द्र को आगे कर समस्त देव और धरणेन्द्र आये, उस बालक को सुमेरु पर्वत पर ले गये, क्षीरसागर के जल से उनका अभिषेक किया, अलंकारों से अलंकृत किया, कुन्थु नाम रखा, वापिस लाये, माता-पिता को समर्पण किया और अन्त में सब अपने स्थान पर चले गये। श्री शान्तिनाथ तीर्थंकर के मोक्ष जाने के बाद जब आधा पल्य बीत गया तब पुण्य के सागर श्रीकुन्थुनाथ भगवान उत्पन्न हुए थे, उनकी आयु भी इसी अन्तराल में सम्मिलित थी। पञ्चानवें हजार वर्ष की उनकी आयु थी, पैंतीस धनुष ऊँचा शरीर था और तपाये हुए सुवर्ण के समान कान्ति थी। तेईस हजार सात सौ पचास वर्ष कुमारकाल के बीत जाने पर उन्हें राज्य प्राप्त हुआ था और इतना ही समय बीत जाने पर उन्हें अपनी जन्मतिथि के दिन चक्रवर्ती की लक्ष्मी मिली थी। इस प्रकार वे बड़े हर्ष से बाधारहित, निरन्तर दश प्रकार के भोगों का उपभोग करते थे।

किसी समय वे षडङ्ग सेना से संयुक्त होकर क्रीड़ा करने के लिए वन में गए थे, वहाँ चिरकाल तक इच्छानुसार क्रीड़ाकर वे नगर को वापिस लौट रहे थे। कि मार्ग में उन्होंने किसी मुनि को आतप योग से स्थित देखा और देखते ही मन्त्री के प्रति तर्जनी अँगुली से इशारा किया कि देखो, देखो। मन्त्री उन मुनिराज को देखकर वहीं पर भक्ति से नतमस्तक हो गया और पूछने लगा कि हे देव! इस तरह का कठिन तप तपकर ये क्या फल प्राप्त करेंगे ? चक्रवर्ती कुन्थुनाथ हँसकर फिर कहने लगे कि ये मुनि इसी भव में कर्मों को नष्ट कर निर्वाण प्राप्त करेंगे। यदि निर्वाण न प्राप्त कर सकेंगे तो इन्द्र और चक्रवर्ती के सुख तथा ऐश्वर्य का उपभोगकर क्रम से शाश्वतपद-मोक्ष स्थान प्राप्त करेंगे। जो परिग्रह का त्याग नहीं करता है, उसी का संसार में परिभ्रमण होता है। इस प्रकार परमार्थ को जाननेवाले भगवान कुन्थुनाथ ने मोक्ष तथा संसार के कारणों का निरूपण किया। क्रमशः

करणानुयोग

भरतक्षेत्र के खण्ड

35. दिव्यध्वनि :

केवलज्ञान होने के पश्चात् अर्हंत भगवान के सर्वांग से एक विचित्र गर्जना ओंकार ध्वनि खिरती है, उसे दिव्यध्वनि कहते हैं। भगवान की इच्छा न होते हुए भी भव्य जीवों के पुण्य से सहज खिरती है, पर गणधर देव की अनुपस्थिति में नहीं खिरती। दिव्य ध्वनि 18महाभाषा, 700 क्षुल्लक अर्थात् लघु भाषाओं में, दाँत, कंठ, होंठ, तालू आदि की चंचलता से रहित होती है।

36. मानुषोत्तर पर्वत :

भूमि पर रखे कटे हुए फल के समान एक तरफ भित्ति के समान एक हजार सात सौ इक्कीस हजार योजन ऊँचा है।

इस पर्वत की चौड़ाई ऊपर चोटी पर चार सौ चौबीस योजन है तथा पृथ्वी तल में एक हजार बाईस योजन प्रमाण चौड़ाई है।

37. मल-मूत्र किसके नहीं होता :

त्रेसठ श्लाका पुरुष अर्थात् चौबीस तीर्थंकर, बारह चक्रवर्ती, नौ नारायण, नौ प्रतिनारायण, नौ बलभद्र, चौबीस तीर्थंकरों के पिता, चौबीस तीर्थंकरों की माता कुल मिला कर एक सौ ग्यारह कर्म भूमि के व पूर्ण भोग भूमि के पुरुषों को मल-मूत्र व दाढ़ी-मूँछ नहीं होती। वीर्य जरूर होता है। तीर्थंकर की माता रजस्वला नहीं होती है।

38. चन्द्रमा व सूर्य का प्रमाण :

जम्बूद्वीप में दो सूर्य तथा दो चन्द्रमा हैं। लवण समुद्र में चार सूर्य तथा चार चन्द्रमा हैं। धातकीखण्ड में 12 चन्द्रमा और 12 सूर्य हैं। कालोदधि समुद्र में बयालीस सूर्य तथा बयालीस चन्द्रमा हैं और पुष्करार्ध में बहत्तर सूर्य तथा बहत्तर चन्द्रमा हैं। इस प्रकार ढाई द्वीप में पाँच स्थानों पर 132 चन्द्रमा और 132 सूर्य हैं। ये सब ग्रह, नक्षत्र, तारा आदि मेरु के चक्कर

लगाते हैं। ढाई द्वीप से बाहर के सूर्य चन्द्रमादि के सब ज्योतिष्क विमान स्थिर हैं।

39. एक चन्द्रमा परिग्रह :

अट्ठाईस नक्षत्र, अठासी ग्रह, छियासठ हजार नौ सौ पचहत्तर कोड़ा कोड़ी तारे हैं।

40. विमान तीन प्रकार के :

इन्द्रक, श्रेणिबद्ध, प्रकीर्णक, चौरासी लाख सत्तानवे हजार तेईस (84,97,023) विमान हैं।

41. सूर्य का गमन :

माघ महीने में कृष्ण पक्ष की सप्तमी के दिन रुद्र मुहूर्त में सूर्य दक्षिणायन से चलन उत्तरायन में गमन प्रारम्भ करता है। कार्तिक मास की कृष्ण पक्ष की तृतीय के दिन, रोहिणी नक्षत्र के दिन और रात्रि समान होते हैं।

42. जीवों में लेश्याओं का विधान :

1. **कृष्ण** लेश्या, **नील** लेश्या और **कापोत** लेश्या के जीव एकेन्द्रिय से लेकर असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक होते हैं।

2. **पीत** लेश्या और **पद्म** लेश्या वाले जीव संज्ञी मिथ्यादृष्टि से लेकर अप्रमत्त संयत गुणस्थान तक होते हैं।

3. **शुक्ल** लेश्या वाले जीव संज्ञी मिथ्यादृष्टि से लेकर सयोग केवली तक होते हैं।

43. मनुष्य के कितने भेद हैं :

मनुष्य के दो भेद हैं — 1. आर्य, 2. म्लेच्छ।

1. आर्य - जो असि / शस्त्र धारण; मसि/लिखने का काम, कृषि, शिल्प, वाणिज्य और विद्या/नाचना, गाना, सेवा आदि इन छह कर्मों से आजीविका करते हैं।

2. म्लेच्छ – म्लेच्छ खण्ड में रहने वाले मनुष्य म्लेच्छ कहलाते हैं अथवा जो त्रस जीवों की संकल्पी हिंसा करके अपना उदर निर्वाह करते हैं।

आर्य दो प्रकार के होते हैं—

1. ऋद्धि प्राप्त आर्य, 2. अनऋद्धि प्राप्त आर्य।

1. ऋद्धि प्राप्त आर्य–

जिनको बुद्धि, विक्रिया, तप, बल, औषध, रस और अक्षीण – ये सात ऋद्धियाँ प्राप्त होती हैं। वे सात प्रकार के ऋद्धि प्राप्त आर्य होते हैं।

2. अनऋद्धि प्राप्त आर्य–

जिनको ऋद्धि प्राप्त न हो, उन्हें अनऋद्धि प्राप्त आर्य कहते हैं। अनऋद्धि प्राप्त आर्यों के क्षेत्र आर्य, जाति आर्य, कर्म आर्य, चारित्र आर्य, दर्शन आर्य, इस प्रकार पाँच भेद है।

म्लेच्छ भी अन्तर्द्वीपज और कर्म भूमिज दो प्रकार के हैं।

44. चक्रवर्तियों का वर्णन –

प्रत्येक चक्री उत्तम संहनन, उत्तम संस्थान से युक्त सुवर्ण वर्ण वाले होते हैं। उनके छियानवें हजार रानियाँ होती हैं—इनमें 32000 आर्यखण्ड की कन्यायें, 32000 विद्याधर कन्यायें और 32000 म्लेच्छ कन्यायें होती हैं। प्रत्येक चक्री के संख्यात हजार पुत्र पुत्रियाँ, 32000 गणबद्ध राजा, 360 रसोइये, 35000000 (साढ़े तीन करोड़) बन्धुवर्ग, 30000000 गायें, 10000000 थालियाँ, 840000000 उत्तमवीर, 88000 म्लेच्छराजा अनेकों करोड़ विद्याधर, 32000 मुकुटबद्ध राजा, 32000 नाटकशालायें, 32000 संगीतशालायें और 48000000 पदातिगण होते हैं।

सभी चक्रवर्तियों में से प्रत्येक के 960000000 ग्राम, 75000 नगर, 76000 खेट, 24000 कर्वट, 4000 मंटब, 48000 पत्तन, 99000 द्रोणमुख, 74000 संवाहन, 56अन्तद्वीप, 600 प्रत्यंतर कुक्षी, 700 प्रत्यंतर कुक्षी निवास, 800 कक्षा, 28000 दुर्गादि होते हैं एवं चौदह रत्न नवनिधि और दशांग भोग होते हैं।

चार प्रकार की सेना—

हाथी चौरासी लाख, रथ चौरासी लाख, घोड़े अठारह करोड़, प्यादे चौरासी करोड़।

चौदह रत्न उपजने के स्थान—

नगर में पाँच—1. सेनापति, 2. गृहपति, 3. शिल्पकार, 4. पुरोहित और 5. स्त्री होते हैं।

दो विजयार्ध पर्वत—हाथी, घोड़ा।

श्री देवी के स्थान में तीन—1. कांकणी रत्न, 2. चूड़ामणि, 3. चर्म रत्न।

आयुधशाला चार—1. खड्ग, 2. छत्र, 3. दण्ड, 4. चक्र।

ये सात अचेतन रत्न कहलाते हैं।

चौदह रत्न

इनमें से गज, अश्व, गृहपति, स्थपति, सेनापति पुरोहित, स्त्री रत्न—ये सात चेतन तथा छत्र, असि, दण्ड, चक्र, कांकिणी, चूड़ामणि और चर्म ये सात रत्न निर्जीव होते हैं।

चक्रवर्तियों के चामरों को बत्तीस यक्ष ढोरते हैं।

नवनिधि

काल, महाकाल, पांडु, माणवक, शंख, पद्म, नैसर्ध, पिंग्ल और नाना रत्न—ये नवनिधियाँ नदीमुख श्रीपुर में उत्पन्न हुआ करती हैं। इन नव निधियों में से प्रत्येक क्रम से ऋतु के योग्य द्रव्य, भाजन, धान्य, आयुध, वादित्र, वस्त्र, मंदिर और रत्न समूहों को दिया करती हैं।

चक्रवर्तियों के 24 दक्षिण मुखावर्त धावल व उत्तम शंख, एक कोड़ाकोड़ी हल होते हैं।

नौ निधियों तथा उनके द्वारा प्रदत्त पदार्थ के नाम—

1. काल निधि ऋतु के योग्य पदार्थ देती है।

2. महाकाल निधि से असि, मसि, कृषि वाणिज्य, शिल्प सम्बन्धी वस्तुएँ मिलती हैं।

3. नैसर्प से बर्तन मिलते हैं।

4. पांडुक से सर्व प्रकार के रस तथा धन मिलते हैं।

5. पद्म से सर्व प्रकार के वस्त्र मिलते हैं।

6. माणवक से सर्व प्रकार के आयुध मिलते हैं।

7. पिंगल से सर्व प्रकार के आभूषण मिलते हैं।

8. शंख से सर्व प्रकार के बाजे मिलते हैं।

9. सर्व रत्न से सर्व प्रकार के रत्न मिलते हैं।

ये सभी नदीमुख श्रीपुर में उत्पन्न होती हैं।

क्रमशः

मई 2024 माह के मुख्य जैन तिथि-पर्व

1 मई – वैशाख कृष्ण 8 **अष्टमी**

2 मई – वैशाख कृष्ण 9

श्री मुनि सुव्रतनाथ ज्ञान कल्याणक

3 मई – वैशाख कृष्ण 10

श्री मुनि सुव्रतनाथ जन्म-तप कल्याणक

6 मई – वैशाख कृष्ण 13

श्री धर्मनाथ गर्भ कल्याणक

7 मई – वैशाख कृष्ण 14 **चतुर्दशी**

श्री नमिनाथ मोक्ष कल्याणक

8 मई – वैशाख कृष्ण 15-1

श्री कुंथुनाथ जन्म,तप, मोक्ष कल्याणक

9 मई – वैशाख शुक्ल 2

पूज्य कानजीस्वामी जयन्ती

10 मई – वैशाख शुक्ल 3

अक्षय तृतीया

13 मई – वैशाख शुक्ल 6

श्री अभिनंदननाथ गर्भ-मोक्ष कल्याणक

15 मई – वैशाख शुक्ल 8 **अष्टमी**

16 मई – वैशाख शुक्ल 9

श्री सुमतिनाथ तप कल्याणक

17 मई – वैशाख शुक्ल 10

श्री महावीर ज्ञान कल्याणक

21 मई – वैशाख शुक्ल 13

श्री धर्मनाथ गर्भ कल्याणक

22 मई – वैशाख शुक्ल 14 **चतुर्दशी**

25 मई – ज्येष्ठ कृष्ण 2

संकल्प दिवस

29 मई – वैशाख कृष्ण 6

श्री श्रेयांसनाथ गर्भ कल्याणक

29 मई – वैशाख कृष्ण 6 **अष्टमी**

प्रथमानुयोग

कवि परिचय

पण्डित भागचन्द जी

बीसवीं शताब्दी के कवियों में भागचन्द जी का भी अपना स्थान है। ईसागढ़, जिना-गुना, म०प्र० के निवासी ओसवाल जैन थे। संस्कृत एवं हिन्दी दोनों पर आपका समान अधिकार था। अब तक इनकी ६ रचनाएँ प्राप्त हो चुकी हैं, जो इस प्रकार हैं —

1. उपदेश सिद्धान्त रत्नमाला
2. प्रमाण परीक्षा भाषा
3. नेमिनाथ पुराण भाषा
4. अमितगति श्रावकाचार भाषा
5. ज्ञान सूर्योदय नाटक टीका
6. महावीराष्टक स्तोत्र संस्कृत

उपरोक्त सभी रचनाएँ सं० 1907 से 1913 तक की हैं। कवि के अब तक 86 पद उपलब्ध हो चुके हैं, जो सभी अपने आप में महत्वपूर्ण एवं उच्चस्तरीय हैं। आत्मा परमात्मा के सम्बन्ध में उन्होंने अपने सुलझे विचार पदों में व्यक्त किए हैं। 'सुमर सदा मन आतमराम।' तथा 'जब निज आतम अनुभव आवै तब और कछु न सुहावै' इनके पद बहुत ही मार्मिक हैं। संसार की अवास्तविकता का चित्रण करता हुआ कवि कहता है —

जीव तू भ्रमत सदैव अकेला।
संग साथी कोई नहीं तेरा॥
अपना सुख दुख आप ही भुगते होत कुटुम्ब न भेला।
स्वार्थ गए सब विछुरि जात है, विधट जात योंमेला॥1॥
रक्षक कोई न पूरन ह्वै जब आयु अंत की बेला।
फूटत पार बंधति नहिं जैसे दुद्धर जल को ठोला॥2॥
तन-धन-जीवन विनश जात ज्यों, इन्द्रजाल को खेला।
भागचन्द इमि सीख मान कर हो सत्गुरु का चेला॥3॥
जीव तू भ्रमत सदैव अकेला।

करणानुयोग

श्रुत परम्परा एवं श्रुतज्ञान का स्वरूप

चरणानुयोग

आचार्य ब्रह्मदेव कहते हैं—

उपासकाध्ययनादौ श्रावकधर्ममाचाराराधनादौ यतिधर्मञ्च यत्र मुख्यत्वेन कथयति स चरणानुयोगो भण्यते।

वृहद् द्रव्यसंग्रह, टीका पृष्ठ 208

अर्थात् उपासकाध्ययनादि में श्रावकधर्म का और आचार आराधना आदि में यतिधर्म का जहाँ मुख्यरूप से कथन किया जाता है, वह चरणानुयोग कहलाता है।

चरणं, चारित्रं, आचरण करने को चारित्र कहते हैं। वह आचरण मिथ्या और सम्यक् दोनों ही प्रकार का होता है। जब तक जीव को वस्तु तत्त्व की सच्ची श्रद्धा नहीं होती, तब तक उसका आचरण सम्यक् नहीं होता; किन्तु जब उसको वस्तु तत्त्व की सच्ची प्रतीति व सच्चा ज्ञान होता है, तब उसका आचरण सम्यक् होता है। चरणानुयोग सम्यग्ज्ञान का वह भाग है, जिसमें गृहस्थ धर्म तथा मुनि धर्म का पूर्णतया विवेचन किया गया है।

आचार्य समंतभद्र कहते हैं—

गृहमेध्यनगाराणां चारित्रोत्पत्तिवृद्धिरक्षाङ्गम्।
चरणानुयोगसमयं सम्यग्ज्ञानं विजानाति॥

रत्नकरण्ड श्रावकाचार, श्लोक 45

अर्थात् गृह में आसक्त है बुद्धि जिनकी ऐसे गृहस्थ गृह से विरक्त होकर गृह के त्यागी ऐसे अनगार अर्थात् यति, उनका चारित्ररूप जो सम्यक् आचरण उसकी उत्पत्ति, वृद्धि और रक्षा का अंग अर्थात् कारण ऐसे चरणानुयोग सिद्धान्त को सम्यग्ज्ञान ही जानता है। मुनि और गृहस्थ का जो निर्दोष आचरण, उसकी उत्पत्ति का, दिन-प्रतिदिन वृद्धि का, धारण किए आचरण की रक्षा का कारण चरणानुयोग रूप सम्यग्ज्ञान ही है।

पंडित आशाधरजी कहते हैं—

सकलेतरचारित्रजन्मरक्षाविवृद्धिकृत्।
विचारणीयश्चरणानुयोगश्चरणादृतैः ॥

धर्मामृत अनगार, तृतीय अध्याय, श्लोक 11

अर्थात् चारित्र पालन के लिए तत्पर पुरुषों को सकल चारित्र और विकल चारित्र की उत्पत्ति, रक्षा और विशिष्ट वृद्धि को करने वाले चरणानुयोग का चिन्तन करना चाहिए।

रत्नकरण्डश्रावकाचार, पुरुषार्थ सिद्धि उपाय, अमितगतिश्रावकाचार, वसुनन्दि श्रावकाचार आदि ग्रन्थ चरणानुयोग के उदाहरण हैं।

चरणानुयोग का प्रयोजन

चरणानुयोग में नाना प्रकार धर्म के साधन निरूपित करके जीवों को धर्म में लगाते हैं। जो जीव हित-अहित को नहीं जानते, हिंसादिक पाप कार्यों में तत्पर ही रहते हैं; उन्हें, जिस प्रकार पाप कार्यों को छोड़कर धर्मकार्यों में लगें, उस प्रकार उपदेश दिया है, उसे जानकर जो धर्म-आचरण करने को सन्मुख हुए, वे जीव गृहस्थ धर्म व मुनिधर्म का विधान सुनकर आपसे जैसा सधे वैसे धर्म-साधन में लगते हैं।

ऐसे साधन से कषाय मन्द होती है। उसके फल में इतना तो होता है कि कुगति में दुःख नहीं पाते, सुगति में सुख प्राप्त करते हैं। ऐसे साधन से जिनमत का निमित्त बना रहता है, वहाँ तत्त्वज्ञान की प्राप्ति होना हो तो हो जाती हैं। जो जीव तत्त्वज्ञानी होकर चरणानुयोग का अभ्यास करते हैं, उन्हें यह सर्व आचरण अपने वीतराग भाव के अनुसार भासित होते हैं। एकदेश व सर्वदेश वीतरागता होने पर ऐसी श्रावकदशा मुनिदशा होती है; क्योंकि इनके निमित्त-नैमित्तिकपना पाया जाता है। ऐसा जानकर श्रावक-मुनिधर्म के विशेष पहचानकर जैसा अपना वीतराग भाव हुआ हो, वैसा अपने योग्य धर्म को साधते हैं। वहाँ जितने अंश में वीतरागता होती है, उसे कार्यकारी जानते हैं, जितने अंश में राग रहता है, उसे हेय जानते हैं। सम्पूर्ण वीतरागता को परम धर्म मानते हैं। **—मोक्षमार्गप्रकाशक, आठवाँ अधिकार, पृष्ठ 270-71**

इस प्रकार चरणानुयोग का वर्णन हुआ। **क्रमशः**

बालवाटिका

सर्वश्रेष्ठ शासक

प्रियदर्शी सम्राट अशोक के जन्मदिन का महोत्सव मनाया जा रहा था। सभी प्रदेशों के शासक सम्राट की सेवा में उपहार लेकर उपस्थित हुए थे। सम्राट की ओर से भी सर्वश्रेष्ठ शासक को उपहार देने की घोषणा हो चुकी थी। कौन सर्वश्रेष्ठ शासक है। इसका निर्णय हो रहा था।

राजसभा में सम्राट का अभिवादन करके उत्तर सीमांत के प्रान्त–पति ने कहा – मैंने प्रदेश में राज्य की आय में तिगुनी वृद्धि कर ली है।

दक्षिण प्रान्त के शासक ने निवेदन किया – मेरे प्रान्त ने इस वर्ष राजकोष को दुगुना सोना अर्पित किया है।

पूर्वी प्रदेश के अधिकारी ने गौरव के साथ कहना प्रारंभ किया – पूर्वी सीमान्त के समस्त उपद्रवी तत्त्वों को कुचलकर राज्य शासन को निष्कंटक बना दिया है मैंने। अब कोई राज्य के विरुद्ध सिर उठाने का साहस नहीं करेगा।

मगध के प्रान्त–पति एक अन्य शासक भी खड़े हुए। सम्राट को अभिवादन करके नम्रतापूर्वक बोले – श्रीमान्! मैं क्या निवेदन करूँ? आधे से भी कम धनराशि राजकोष में दे पाया हूँ। प्रजा के कर हटा दिये, सैनिकों तथा कर्मचारी वर्ग के वेतन में वृद्धि हो गई। राज्य में स्थान–स्थान पर चिकित्सालय, बालकों की शिक्षा के लिए पाठशालाएँ खोली गई हैं और कोई विशेष कार्य तो मुझसे नहीं हो पाया है।

प्रियदर्शी सम्राट् आसन से उठे बड़ी ही गंभीर मुद्रा में बोले पड़े – मुझे प्रजा का शोषण करके प्राप्त होने वाली स्वर्ण राशि नहीं चाहिए। मेरी इच्छा है कि प्रजा को अधिक से अधिक सुख–सुविधा दी जावे। मगध के शासक सर्वश्रेष्ठ शासक घोषित किये जाते हैं। यह पुरस्कार उनका ही नहीं, हमारे शासन का गौरव बढ़ाएगा तथा अन्य प्रान्तीय शासकों को भी प्रेरणा देगा। सम्राट की घोषणा पर सभामंडप जय–जयकार के तुमुल घोष से गूँज उठा।

शिक्षा–राजा प्रजा का पालक होता है; अतः वही शासक श्रेष्ठ है, जो प्रजा को कष्टों से बचावे।

"जिस प्रकार–उसी प्रकार" में छिपा रहस्य

जिस प्रकार– शीलवान पुरुष परस्त्री की तरफ आंख उठा कर नहीं देखता।

उसी प्रकार– परमशील स्वरूप ज्ञान पर सन्मुख होकर पर को नहीं जानता। अपनी स्वच्छत्व शक्ति की व्यक्तता होने पर सहज ज्ञान में आ भी जावे तो उनमें किसी प्रकार निजत्व नहीं जोड़ता।

जिस प्रकार– कोयले को जलाने से श्वेतता प्रकट होती है।

वैसे ही– संसार संबंधी विकल्पों को तत्त्वविचार द्वारा जला देने पर ही परिणामों में उज्ज्वलता सम्भव है।

जिस प्रकार– बादलों के होने पर सूर्य का कुछ नहीं बिगड़ता, मात्र उसको देखने वाला ही सूर्य के प्रकाश से वंचित रहता है।

उसी प्रकार– कर्मों का आवरण होने पर भी आत्मा का कुछ बिगाड़ नहीं हुआ। मात्र कर्मों का अनुभवन करने वाली पर्याय ही ज्ञान सुख से वंचित रहती है।

जिस प्रकार– लोक में भी प्रकाश करो ऐसा बोलते हैं। अंधेरा भगाओ ऐसा नहीं कहते, जानते हैं कि प्रकाश करने से अंधेरा स्वयं गायब हो जायेगा।

उसी प्रकार– आचार्य कहते है आत्मा को उपयोग में लाओ। स्वयमेव सुख प्रकट हो जायेगा तथा दुःख नहीं रहेगा।

जिस प्रकार– निर्मल दर्पण अपने समीप आई किरणों को आत्मसात् नहीं करता।

उसी प्रकार– निर्मल ज्ञान भी परभावों को परावर्तित कर देता है, जबकि मोही परभावों को आत्मसात कर लेता है, यही दुःखी होने का कारण है।

जिस प्रकार– जगत में कहते है कि कदम–कदम पर पैसे की जरूरत पड़ती है।

उसी प्रकार– आत्मा में पग–पग पर पुरुषार्थ की आवश्यकता है। पुरुषार्थ के बिना एक भी पर्याय प्रगट नहीं होती। रुचि से लेकर ठेट केवलज्ञान तक पुरुषार्थ ही आवश्यक है।

जिस प्रकार– वृक्ष का मूल पकड़ने से सब हाथ आता है।

उसी प्रकार– ज्ञायक भाव पकड़ने से सब हाथ आयेगा। शुभ परिणाम पकड़ने से कुछ हाथ नहीं आयेगा। यदि स्वभाव को पकड़ा होगा तो चाहे जो प्रसंग आयें उस समय शांति समाधान रहेगा।

जिस प्रकार– नाविक नाव में अभिप्राय पूर्वक पानी नहीं भरता। कदाचित छेद हो जाने से पानी भरने लगे तो छेद बंद करने तथा पानी निकालने को पूरा प्रयत्न करता है क्योंकि उसे दृढ़ विश्वास है कि नाव में पानी भरने से सागर में डूब जायेगी।

उसी प्रकार– ज्ञानी का अभिप्राय भोगादि जुटाने तथा रागदि करने का होता ही नहीं। कदाचित् सहज जुट जावे तो उनको भेदविज्ञान के बल से बाहर कर देता है। अर्थात् भिन्न अनुभव करता है। स्वात्मा विचार, तत्त्व निर्णय, ज्ञानाभ्यास आदि द्वारा उनकी ओर उपयोग जाने के छेद बन्द कर देता है। पुरुषार्थ की शिथिलता से होने वाले कषायों के प्रति प्रतिक्रमण, आलोचना, प्रत्याख्यान का मार्ग अपनाकर बड़ी सावधनी से भवसागर से पार हो जाता है।

क्रमशः **संकलन – स्व० प्रो० पुरुषोत्तमकुमार जैन, रुड़की**

समाचार-दर्शन

भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन का

22वाँ साक्षात्कार शिविर सम्पन्न

तीर्थधाम मङ्गलायतन : यहाँ संचालित भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन का नवीन प्रवेशार्थियों के प्रवेश हेतु 22वाँ साक्षात्कार शिविर दिनांक 26 मार्च 2024 से 31 मार्च 2024 तक सम्पन्न हुआ। जिसमें कानपुर से पधारे श्री अंकुर जैन; शिवपुर से श्री दिनेश जैन; सागर से पण्डित अभिषेक शास्त्री; जबलपुर से श्री अभिषेक जैन एवं प्रशान्त जैन; गढ़ाकोटा से श्री चक्रेश जैन; मङ्गलायतन विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति श्री के.वी.एस. कृष्णा; श्री अनिल जैन परिवार बुलन्दशहर आदि महानुभावों की उपस्थिति में शिविर उद्घाटन एवं अनेक कार्यक्रम सम्पन्न हुए।

मुम्बई से पधारे पण्डित जे.पी. दोशी ने मंगल प्रज्ञा के आधार पर प्रवेशार्थी बच्चों की कक्षा; पण्डित अभिषेक शास्त्री; पण्डित अशोक लुहाड़िया द्वारा वर्तमान में नरभव की दुर्लभता विषय पर स्वाध्याय द्वारा तत्त्वज्ञान का लाभ दिया। पण्डित दिव्यांश शास्त्री, अलवर द्वारा भक्तिगीतों एवं भजन, भाषण और प्रतिभा प्रदर्शन प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया।

सर्वश्रेष्ठ मङ्गलार्थी छात्र का पुरस्कार मङ्गलार्थी ध्रुव जैन रतलाम, कक्षा 11 को प्रदान किया गया। इनको ट्रॉली, नकद राशि व टेबलेट देकर सम्मानित किया गया।

कार्यक्रम के प्रथम दिन शिविर की आवश्यकता और उपयोगिता पर पण्डित अशोक लुहाड़िया एवं विद्यानिकेतन की विशेषताएँ-साक्षात्कार शिविर की प्रक्रिया सम्बन्धी पण्डित सुधीर शास्त्री द्वारा उद्बोधन दिया गया। कार्यक्रम का संचालन उपप्राचार्य पण्डित समकित जैन द्वारा किया गया। इस प्रकार औपचारिक उद्घाटन कार्यक्रम सम्पन्न हुआ।

प्रवेशार्थी शिविर में 28 सुयोग्य मङ्गलार्थी छात्रों का चयन निष्पक्ष चयन प्रक्रिया धार्मिक परीक्षा व लौकिक परीक्षा डी.पी.एस. में आयोजित की गयी। अन्तिम दिन 31 मार्च को श्री स्वप्निल जैन द्वारा परीक्षा परिणाम की घोषणा व मङ्गलार्थी छात्रों एवं अभिभावकों को महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ प्रदान की गयीं।

इस अवसर पर भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन के डॉ. सचिन्द्र शास्त्री द्वारा सभी मङ्गलार्थी एवं अभिभावकों को मङ्गलार्थी बनने की शपथ ग्रहण करायी गयी।

जिनबिम्ब प्राण प्रतिष्ठा सानन्द सम्पन्न

खड़ैरी : धार्मिक और शास्त्रीमय नगरी जहाँ से करीब 45 भव्य जीवों ने देशभर में संचालित मुमुक्षु संस्थाओं से धार्मिक अध्ययन कर अपना जीवन धन्य किया है। उसी शास्त्री परिषद के निर्देशन और श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन मन्दिर ट्रस्ट के संयोजकत्व में 06 मार्च से 11 मार्च 2024 तक श्री आदिनाथ दिगम्बर जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव का आयोजन उत्साहपूर्वक किया गया।

यह महोत्सव बाल ब्रह्मचारी अभिनन्दन शास्त्री के प्रतिष्ठाचार्यत्व एवं पण्डित अभय कुमार शास्त्री तथा पण्डित संजय शास्त्री के संचालकत्व में सम्पन्न हुआ।

इस अवसर पर पण्डित राजेन्द्र जैन, डॉ. मनीष शास्त्री, पण्डित विपिन शास्त्री, पण्डित पीयूष शास्त्री, पण्डित राजकुमार शास्त्री, पण्डित राजेन्द्र टीकमगढ़, ब्रह्मचारी सुकमाल झांझरी, डॉ. मनोज जैन, पण्डित अजित शास्त्री, ब्रह्मचारी श्रेणिक जैन, पण्डित ऋषभ शास्त्री, पण्डित विवेक शास्त्री, श्री सुनील धवल के अतिरिक्त लगभग 200 शास्त्री विद्वान उपस्थित रहे।

इस अवसर पर शौरीपुर में समुद्रविजय की राजसभा व सौधर्मेन्द्र की इन्द्रसभा में तत्त्वचर्चा, पाण्डुकशिला पर जन्माभिषेक, पालना-झूलन, आहार-दान की विधि, समवसरण, दिव्यध्वनि श्रवण, निर्वाण महोत्सव आदि आनन्दवर्धक प्रसंगों एवं समागत विद्वानों के मार्मिक व्याख्यानों से सभी के ज्ञान-वैराग्य में वृद्धि हुई। साथ ही तपकल्याणक के अवसर पर श्री संजीव जैन, उस्मानपुर द्वारा विशेष आध्यात्मिक भजन संध्या आयोजित हुई।

प्रतिष्ठा में सौधर्म इन्द्र-इन्द्राणी श्री माधव शास्त्री-रश्मि जैन, शाहगढ़; कुबेर इन्द्र-इन्द्राणी श्री नीलेख-रेशू जैन, बकस्वाहा एवं भगवान के माता-पिता श्रीमती कुसुम-नरोत्तमदास जैन, खड़ैरी रहे। ध्वजारोहण श्री सुनील सर्राफ, सागर ने किया।

इसी प्रसंग में जन्म कल्याणक के अवसर पर आगामी पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महामहोत्सव हस्तिनापुर तीर्थधाम चिदायतन का आमन्त्रण पण्डित संजय शास्त्री, पण्डित पीयूष शास्त्री जयपुर, श्री सुनील सर्राफ, डॉ. सचिन्द्र शास्त्री की उपस्थिति में पण्डित अभयजी देवलाली द्वारा दिया गया।

सम्पूर्ण कार्यक्रम में श्री प्रेमचन्द बजाज, कोटा; डॉ. बासंती बेन शाह, मुम्बई एवं श्री राहुल गंगवाल जयपुर का विशेष सहयोग रहा। कार्यक्रम का संयोजन पण्डित टोडरमल युवा शास्त्री परिषद्, खड़ैरी ने किया।

तीर्थधाम चिदायतन में पूजन-विधान सम्पन्न

तीर्थधाम चिदायतन : फाल्गुन माह के अष्टाह्निका महापर्व के अवसर पर श्री भगवान शान्तिनाथ के चैत्यालय में देवाधिदेव के गुणानुवाद, पूजन-विधान व आत्म आराधना हेतु स्वाध्याय का पुनीत कार्यक्रम सानन्द सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर श्री शान्तिनाथ-कुन्थुनाथ-अरनाथ विधान का आयोजन हुआ। ध्वजारोहण कर्ता श्री सुभाषजी परिवार, गाजियाबाद थे।

सम्पूर्ण कार्यक्रम डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, पण्डित अभिषेक शास्त्री मङ्गलायतन के निर्देशन में सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर खतौली, खेकड़ा, दिल्ली, सहारनपुर आदि स्थानों से सैकड़ों भाई-बहिनों ने पधारकर लाभ लिया।

वैराग्य समाचार

अहमदाबाद : श्रीमती ज्योत्स्नाबेन का देह परिवर्तन हो गया है।

सोनगढ़ : ब्रह्मचारिणी इन्दुबेन लोदरिया का देह परिवर्तन हो गया है। आप पूज्य गुरुदेवश्री अनन्य भक्त थीं। आपका निवास गुरुदेवश्री के समय से ही सोनगढ़ में था।

इन्दौर : श्री आनन्दकुमार पाटनी का देह परिवर्तन हो गया है। आप तीर्थधाम ढाई द्वीप जिनायतन इन्दौर पंच कल्याणक में भगवान के पिताश्री थे।

तीर्थधाम मङ्गलायतन परिवार दिवंगत आत्माओं के सुगतिगमन, बोधिलाभ एवं शीघ्र मुक्ति प्राप्ति की भावना भाता है।

षट्खण्डागम ग्रन्थ की वाचना अनवरत प्रवाहित

चौदहवीं पुस्तक की वाचना 01 मार्च 2024 से प्रारम्भ

विद्वत् समागम - आदरणीय बालब्रह्मचारिणी कल्पनाबेन, जयपुर

दोपहर 01.30 से 03.15 तक (प्रतिदिन)		**षट्खण्डागम (धवलाजी)**
रात्रि	07.30 से 08.30 बजे तक	मूलाचार ग्रन्थ का स्वाध्याय
	08.30 से 09.15 बजे तक	**समयसार ग्रन्थाधिराज के कलशों का व्याकरण के नियमानुसार शुद्ध उच्च्चारण सहित सामान्यार्थ**

नोट—इस कार्यक्रम में आप ZOOM ID-9121984198,

- Password - tm@4321 youtube channel - teerthdhammangalayatan

के माध्यम से भी शामिल हो सकते हैं।

मंगल अवसर

तीर्थधाम चिदायतन पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव

हस्तिनापुर में, तीर्थधाम चिदायतन का निर्माण कार्य तेजी से चल रहा है, तीर्थधाम मंगलायतन के निर्देशन में ही तीर्थधाम चिदायतन का पंचकल्याणक - 01 दिसम्बर से 06 दिसम्बर 2024 तक होना निश्चित हुआ है।

जगत में पंचकल्याणक सम्यग्दर्शन का सर्वोत्कृष्ट निमित्त कार्य है आप यहाँ के अभिन्न अंग हैं यह कहने की आवश्यकता नहीं कि आप सपरिवार पधारे... आप सभी लोग तो पधार ही रहे हैं, साथ में और भी अपने परिजनों, साधर्मी जनों को भी लेकर आना है।

आप हमसे निम्नरूप से जुड़ सकते हैं —

पंचकल्याणक में जो भी पात्र बाकी है उनको भरा जाना है....

पद	संख्या
भगवान आदिनाथ की 71 इंच उन्नत श्वेत मार्बल की कायोत्सर्गवंत प्रतिमा	
भगवान महावीर की 71 इंच उन्नत श्वेत मार्बल की कायोत्सर्गवंत प्रतिमा	
ईशान इन्द्र-इन्द्राणी	
सानत इन्द्र-इन्द्राणी	
माहेन्द्र इन्द्र-इन्द्राणी	
9 नंबर से 12 नंबर पद इन्द्र	
13 नंबर से 16 नंबर पद इन्द्र	
लौकान्तिक देव	
माता-पिता	
महामंत्री	
यज्ञनायक	
1 से 8 नम्बर राजा	
12 वाँ राजा	
राजसभा के छड़ीदार	2
भूमिगोचर राजा	4

विद्याधर राजा	4
अष्टदेवी	16
56 कुमारी	
चौबीसी जिनालय शिखर	
चौबीसी जिनालय शिखर कलश	
चौबीसी जिनालय वेदी	
मुख्य शिखर ध्वजा	
मुख्य तोरण द्वार	
सिंह द्वार	
मुख्य प्रवेश द्वार	
मुख्य निकास द्वार	
जिनवाणी विराजमानकर्ता	
श्री कुन्दकुन्दाचार्य फोटो	
श्री अकम्पनाचार्य फोटो	
पण्डित टोडरमलजी फोटो	
पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी फोटो	
रैम्पमार्ग प्रदर्शनी	
शान्तिनाथ जीवनगाथा	

यह अवसर चूकने जैसा नहीं है सभी किसी न किसी रूप में जुड़े, आपके जो भी भाव हो कृपया सूचित करें।

आशा ही नहीं, अपितु पूर्ण विश्वास है कि आप हमारे आग्रह को अवश्य स्वीकार करके इस **पामर से परमात्मा** बनने के महान कार्य में अपनी सहभागिता अवश्य प्रदान करेंगे।

किसी का कोई सुझाव हो तो हमें अवश्य बतलाएँ।

धन्यवाद

सम्पर्क :-

पण्डित सुधीर शास्त्री, 9756633800 ; डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, 7581060200

तीर्थधाम चिदायतन में

पूजन-विधान (25 मार्च 2024) की झलकियाँ

तीर्थधाम चिदायतन के

बढ़ते चरण....

Regn. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2024-26

मुनिराज के पीछी-कमण्डल बाह्य परिग्रह नहीं

मोरपीछी और कमण्डल होते हैं। कभी-कभी दया तथा शरीर की शुचिता के विकल्पकाल में उस ओर लक्ष्य जाता है; उन्हें बाह्य परिग्रह में नहीं गिना गया है, संयमदशा में निमित्तरूप से वे होते हैं। शरीर तो कर्मोदय से प्राप्त है, जिसे छोड़ा न जा सके - ऐसी वस्तु है। अहा! धन्य वह मुनिदशा! जहाँ बाह्य में संयमदशा के सहकारी निमित्तरूप से, शरीरमात्र परिग्रह होता है।

(- वचनामृत प्रवचन, पृष्ठ 184)

पं. सं. : DELBIL/2001/4685

स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक स्वप्निल जैन द्वारा **मङ्गलायतन** मुद्रणालय, आगरा रोड, अलीगढ़-202001 छपवाकर, 'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित। **सम्पादक** : डॉ. जयन्तीलाल जैन,मङ्गलायतन वि०वि०

If undelivered please return to -

मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, हरिनगर, आगरारोड, अलीगढ़-202001 (उ.प्र.)

Shri Adinath-Kundkund-Kahan Digamber Jain Trust

Harinagar, Agra Road, Aligarh-202001 (U.P.)

Ph. : 9997996346, 2410010/10; Fax : 2410019/22

info@mangalayatan.com www.mangalayatan.com